ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 8.4
IJAR 2022; 8(9): 239-241
www.allresearchjournal.com
Received: 01-07-2022
Accepted: 05-08-2022

डॉ. रंजना ग्रेवर
सह–आचार्य, विभाग (संगीत),
सी.एम.के. नेशनल पी.जी. गर्ल्ज कॉलेज, सिरसा, हरियाणा, भारत

Corresponding Author:
डॉ. रंजना ग्रेवर
सह–आचार्य, विभाग (संगीत),
सी.एम.के. नेशनल पी.जी. गर्ल्ज कॉलेज, सिरसा, हरियाणा, भारत

कला और धर्म

डॉ. रंजना ग्रेवर

सारांश
व्यष्टि और समष्टि, दोनों का सुन्दर योग उत्तम समन्वय समाज कहलाता है। दोनो की पृथक न तो सत्ता रहती है और न आहितत्व ही। ये दोनों मिलकर ऐसी जीवनचर्या बनाते हैं, दैनिक क्रिया–कलाप निश्चित करते है, जिससे दोनों का मंगल भी होता है और विकास भी। जीवन निर्माण के इस समूचे क्रिया–कलाप में मनोरंजन का स्थान स्वयम् ही बन जाता है। दिन भर के घोर परिश्रम के पश्चात् जब मानव की बुद्धि थक जाती है, मन कलान्त हो जाता है, तब तरोताजा होने के लिए आवश्यकता पड़ती है किसी ऐसे माध्यम की जो मन और मस्तिष्क फिर से जीवन निर्माण में जुट जाने क्षमता प्रदान करे। अपनी इन्हीं आवश्यकताओं के मानव और समाज ने मिलकर जो अविष्कार किये उन्हें कलाएं कहते हैं। अतः कलाओं के विविध रूप हैं। जिनमें से पाँच ललित कलाएं है और अन्य उपयोगी कलाएं है। मनुष्य के सामाजिक जीवन के साथ–2 उसकी आध्यात्मिक मान्याताओं के विकास में भी इन कलाओं का योगदान होना सम्भव हीं नहीं अपितु अनिवार्य बन जाता है।

कूटशब्दः संगीत, ललित कलाएं, क्रियाकलाप, समाज

प्रस्तावना
ललित कलाओं का उदय भले ही मानव की सहज भावनाओं एवम् अदम्य प्रेरणाओं से हुआ है, परन्तु इनका पालन पोषण धर्म की छत्र छाया में हुआ है। इन कलाओं का और धर्म का अति प्राचीन काल से गहन सम्बन्ध रहा है या यूं कहिए कि ये दोनो एक दूसरे के पूरक रहे हैं। प्रत्येक व्यक्ति चाहे वो कलाकार हो या साधारण व्यक्ति उसका अपने से परे परम शक्ति में जो विश्वास है वही धर्म है जिसके द्वारा वह अपनी भावनाओं की सन्तुष्टि और जीवन की स्थिरता प्राप्त करता है तथा निरो वह पूजार्चना के माध्यम से प्रकट करता है। प्रत्येक व्यक्ति की धर्म, वह मानसिक शक्ति है जो मनुष्य को अनन्त सता का ज्ञान कराने में सक्षम है। साधारण व्यक्ति की धर्म वह ईश्वर के प्रति श्रद्धा को पूजार्चना द्वारा प्रकट करता है, परन्तु कलाकार जब अपने धार्मिक भावों को उजागर करता है तो वह स्थाई रूप में अपनी कृति छोड़ देता है जो अन्य व्यक्तियों की धार्मिक प्रेरणा का स्त्रोत बन जाती है। कला के विषय में कुछ विद्वान मानते हैं कि कला का उपयोगी होना आवश्यक है। लेकिन अन्य मानते है कि कला में सौन्दर्य का अधिक महत्व है उसकी उपयोगिता का नहीं। मगर मैं मानती हूं कि यदि कलाकृति में सुन्दरता के साथ–2 उसकी उपयोगिता भी हो तो उसकी सार्थकता अधिक नजर आती है। परन्तु ताजमहल और मिश्र के पिरामीक ने इस तथ्य को कुछ फ़ीका सा कर दिया। क्योंकि ये तो केवल कब्रें है इनकी अन्य कोई उपयोगिता नहीं परन्तु फिर भी इनमें सौन्दर्य है, आकर्षण है, जिससे देश–विदेश के पर्यटक इनकी ओर खिंचे चले आते हैं। मगर ये तो अपवाद ही हैं।
कोई भी कलाकार अपनी कृति को सार्थक तभी कर सकता है जब जो कला के सिद्धान्तों का निर्वाह करेगा। कला के तत्व या सिद्धान्त निम्न हैं :–

1. विचार करना
2. ध्यान करना
3. कल्पना करना
4. प्रकृति का निर्वाह
5. प्रतीक वाद का सहारा

1. विचार करनाः कलाकार के मन में कोई–कोई विचार आता है। अपने मस्तिष्क में स्थित उस विचार को वह कलाकृति के रूप में मूर्त रूप प्रदान करता है। क्या बनाना है? क्या चित्रित करना

है? या क्या गाना है? यदि यह उसके मस्तिष्क में स्पष्ट नहीं होगा तो वह अपने भाव सम्प्रेषण में सफल नहीं हो पाएगा।

2. ध्यान करना: कलाकार को अपने विचार को साकार करने के लिए उस पर ध्यान केन्द्रित करना तथा चिन्तन मनन करना आवश्यक है। इसके बिना उसकी कृति बिगड़ सकती है। अतः कृति बनाते समय मन की एकाग्रता होनी आवश्यक है जिससे कलाकृति सौन्दर्यमयी हो।

3. कल्पना करना: कल्पना कला का वह माध्यम है जिसके द्वारा कला सदैव नवीन रूप धारण करती है। जैसे एक ही राग को विभिन्न गायक, अपनी कल्पना से सजाकर उसे नवीन रूप देता है तभी तो वर्षों पुराना राग भी हर बार नवीन नज़र आता है। वो कितनी सुन्दर कृति बनाता है यह उस कलाकार की कल्पना बुद्धि पर निर्भर करता है।

4. प्रकृति का निर्वाह: कलाकार अपनी कृति का निर्माण करते हुए प्रकृति का सहारा लेता है। चित्रकार कभी उदय होते सूर्य की लालिमा और कभी अंधकार में तारों की छटा चित्रित करता है। अनेक रागों के बन्दिशों में भी बादल, बिजली, वर्षा, कोयल आदि प्राकृतिक वस्तुओं व पक्षियों आदि का वर्णन मिलता है। कृति में वास्तविकता लाने के लिए प्रकृति का निर्वाह आवश्यक है।

5. प्रतीक वाद का सहारा: भारतीय कलाओं में किसी न किसी रूप में प्रतीकों का अंकन हुआ है। जैसे गणेश जी को ज्ञान का, सरस्वती जी को विधा का, लक्ष्मी जी को धन का, लाल रंग क्रोध का, हरा रंग सम्पन्नता का और सफेद रंग शन्ति का प्रतीक है। अतः भारतीय कलाओं में प्रतीक वाद का सहारा लिया जाता है।

इसके पश्चात् विभिन्न कलाओं का धर्म से क्या सम्बन्ध है इस विषय पर बात करना चाहूंगी।

1. **काव्य और धर्म:** महर्षि वाल्मिकी द्वारा रचित महाकाव्य रामायण, सूर, तुलसी, मीरा आदि संत कवियों का पद साहित्य इस बात का प्रमाण है कि काव्य और धर्म प्राचीन काल से एक दूसरे से जुड़े हुए है।
2. **मूर्ति कला और धर्म:** प्राचीन काल और आधुनिक काल के मूर्तिकारों ने किस प्रकार धर्म और मूर्तिकला को एक रूपता प्रदान की। इसका प्रमाण प्राचीन काल की खुदाइयों से निकली देवी–देवताओं की मूर्तियां और आधुनिक काल के मन्दिरों, देवालयों में स्थापित मूर्तियां है।
3. **चित्रकला और धर्म:** राजस्थानी चित्र शैली में राग भैरव और भैरवी रागजी के चित्र है जिन्हें भगवान शिव और पार्वती जी का रूप मान कर कलाकारों ने सुन्दर चित्रण किया है। आज किसी भी मन्दिर की दीवारों पर सम्पूर्ण कथानक चित्र देखे जा सकते हैं।
4. **भवन निर्माण कला और धर्म :** इन दोनों का घनिष्ठ सम्बन्ध प्राचीन काल और आधुनिक काल के मन्दिरो, मस्जिदों, गुरूद्वारों और मिरजा घरों को देखने से ज्ञात होता है। जिन्हें दूर से ही देखने मात्र से यह ज्ञात हो जाता है कि अमुक इमारत अमुक धर्म से सम्बन्धित है।
5. **संगीत कला और धर्म:** आइये सदीर्घ भारतीय इतिहास पर इस भावना से दृष्टि डालें तो सचमुच यह विदित होगा कि संगीत कला तो अपने उदय काल से ही धर्म की हमजौली रही है। क्योंकि संगीत की उत्पति ही ब्रह्मा जी, शिव जी और सरस्वती जी द्वारा बताई गयी है। वैदिक युग में धार्मिक कर्म–काण्डों ने इसे दुलारा सम्मानित किया और इसकी अपूर्ण अनिवार्यता को स्वीकार किया। दिनो, महिनों और वर्षो तक चलने वाले याग–यज्ञ, संगीत के बिना सम्पूर्ण ही नहीं हो सकते थे, यज्ञ में होता (पुरोहित) का महत्व तो होता ही था, साथ में उद्गाता और उसका वर्ग भी अपने मधुर स्तर में वैदिक ऋचाओं का गान करता था। ऐसी शंका होना सम्भव है कि ये दोनों साथ–2 चलते थे परन्तु संगीत के विकास में उस समय धर्म की भूमिका क्या थी? इस सन्दर्भ में सहज निवेदन यह है कि धर्म तो प्रेरक था और संगीत कला उसके मार्ग–दर्शन पर चलती थी। वशिष्ठ और भारद्वाज आदि ऋषियों के नाम पर विभिन्न ऋचाओं के गान का उल्लेख मिलता है। यह सब कुछ क्या था? धार्मिक प्रेरणा ही तो थी।

वैदिक युग के बाद महाकाव्य युग आता है। तब तक संगीत अधिक परम्पराओं की रीढ़ बन चुका था। ईश्वरी वासना की कुछ नई विधियां चल निकली थी। आवतार बाद भारतीय धर्म का यहां की साकारोवासना का महत्वपूर्ण अंश बन चुका था। राम और कृष्ण धर्म परायण भारतीय समाज के परम श्रद्धेय ईष्ट बन चुके थे। ये नवीन धार्मिक परम्पराएं भी संगीत और धर्म का सम्बन्ध है। वास्तव में संगीत और धर्म का सम्बन्ध वैदिक युग से भी कहीं अधिक घनिष्ट हो चुका था, इसी हेतू जब विश्व के आदि कवि बाल्मिकी ने संसार के सर्वप्रथम महाकाव्य की रचना की तो उन्होंने इस महाकाव्य का गान श्री राम के राजदरबार में लव–कुश के मुख से करवाया।

महाभारत काल में भी स्थिति कुछ ऐसी ही थी। जब श्री कृष्ण स्वयं वंशी वादक हो तब धर्म और संगीत का बिच्छोड़ा कैसा? इस युग में धार्मिक अनुष्ठान जो वैदिक पद्धति पर आधारित थे, वो संगीत के माध्यम से ही होते थे। साथ ही ईश्वर को रिझाने का भक्ति मूलक आधार कीर्तन भी प्रचलित था।

पुरानों में कीर्तन की यह परम्परा अत्यन्त लोकप्रिय हो गयी थी। स्वयम् भगवान के मुख से हय कहलाया गया कि –

यत्र गायन्ति गम् भक्ता
तंत्र मिष्ठानी नारदाः

अर्थात हे नारद! जहां मेरे भक्त मेरी स्तुति का गान करते हैं, मैं वहां निवास करता हूं। जहां भक्ति और गान का सम्बन्ध स्पष्ट कर दिया गया हो वहां धार्मिक प्रेरणा के न होने की गुंजाइश ही नही रह जाती। पुराणों ने तो संगीत और धर्म को तदाकार कर दिया। जैन और बौद्ध जैसे संकीर्ण मनोवृति के धर्मों ने भी अपने प्रचार हेतू संगीत का आर्व आवश्यकता अनुभव की। इन दिनों धार्मिक मठों, मन्दिरों, शिवालयों आदि के निर्माण की परम्परा भी चल निकली थी। भगवान शिव, विष्णु, श्रीराम और कृष्ण की भव्य प्रतिमाएं निर्मित होने लगी। इन पूजा–स्थलों में सगीत के स्वर, वहां के दरो दीवार में समा गए थे। इस कला को अपने विकास के लिए अत्यन्त भव्य, शान्त और अनुकूल अवसर मिल गया। संगीत और धर्म का यह नवीन मिलन परम्पराओं के अनुरूप भी था और नया भी। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि धर्म और संगीत निरन्तर संलग्न रहे हैं। मुगलों के आगमन से पूर्व तक का सम्पूर्ण भारतीय वातावरण संगीत और धर्म के ऐसे ही मधुर मिलन की कहानी है।

हां मुगल काल में सगीत पर प्रभाव अवश्य पड़ा, परन्तु संगीत और धर्म का सम्बन्ध ये भी नहीं तोड़ पाए। सूरदास, मीरा बाई आदि सन्त कवियों ने अपने संगीत मय पदों द्वारा संगीत व धर्म को इतना मजबूती से जोड़ा, जो आज तक चला आ रहा है।

शास्त्रीय संगीत में भी आज अनेक ध्रुवद, बड़े रूयाल और छोटे रूयाल की सैकड़ों बन्दिशें सुनने को मिलती हैं जिनमें विभिन्न देवी–देवताओं की स्तुती है। अनेक सांगितिक वाद्य और तालों के नाम भी देवी–देवताओं के नाम पर रखे गए हैं जो इस प्रकार हैः–

रागः भैरवी, भैरवी , शंकरा, गौरी, दुर्गा
वाद्यः सरस्वती वीणा, रूद्रवीणा, नारदीय वीणा
तलेंः ब्रह्म ताल, रूद्र ताल, लक्ष्मी ताल आदि।

इस पूरे विवचेन से यह स्पष्ट हो गया इन सभी कलाओं समृद्धि और विकास का दायित्व धर्म ने निभाया और अतुल्य योगदान दिया। ये सभी कलाएं धर्म की छत्र छाया में पली बढ़ीं। जब तक मानव और समाज में सहृदयता है, जब तक हमारी भारतीय संस्कृति जीवित है तब तक कला और धर्म का यह मधुर मिलन होता ही रहेगा ऐसा मेरा विश्वास है।

संदर्भ सूची

1. डॉ. लक्ष्मीनारायण, निबंध संगीत
2. पंडित अहोबल, संगीत परिजात
3. डॉ. सोमनाथ, रागाविभोध
4. अमिता शर्मा, शास्त्रीय संगीत का विकास
5. डॉ. मधुबाला सक्सेना, संगीत मधुबन